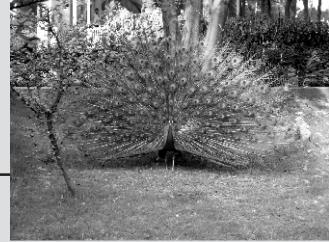


# स्वयं के संवाद

जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं के आलोक में जीवन का अन्वेषण



कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया

दिसम्बर 2017

## जे. कृष्णमूर्ति की नोटबुक से चुने गये अंश

सर्वाधिक महत्व देखने का है। यह देखना समय-आकाश से बाहर है; यह देखना तत्क्षण, तुरंत होता है। और जो देख लिया जाता है वह फिर कभी वही नहीं होता है।

27 जून 1961

इस सबको सूत्रों और शब्दों में व्यक्त करना कितना व्यर्थ जान पड़ता है; चाहे जितने सही शब्द प्रयोग क्यों न किये गये हों, वर्णन कितना भी अधिक सुस्पष्ट क्यों न हो, इस सबके माध्यम से वास्तविक तथ्य संप्रेषित नहीं हो पाता।

इस सबमें एक विराट, और अनिर्वचनीय सुंदरता है। जीवन की एक ही गति है, बाह्य हो या आंतरिक हो; वैसे तो यह गति अविभाज्य है, पर इसे विभाजित कर दिया जाता है। विभाजन के फलस्वरूप अधिकतर लोग इसके बाह्य रूप अर्थात् ज्ञान, धारणाओं, विश्वासों, प्रामाण्य, सुरक्षा और समृद्धि आदि के पीछे भागते हैं। इसकी ही एक प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्ति तथाकथित आंतरिक जीवन का अनुसरण करता है, जिसकी अपनी सूक्ष्म अनुभूतियां, आशाएं, लालसाएं, रहस्य, द्वंद्व तथा हताशाएं होती हैं। चूंकि यह गति भी एक प्रतिक्रिया ही है, अतएव बाह्य गति से इसका टकराव चलता रहता है। इसके फलस्वरूप एक अंतर्विरोध उत्पन्न हो जाता है, जिसके अपने ही क्लेश, दुश्चिंताएं तथा पलायन आदि होते हैं।

वस्तुतः केवल एक ही गति है, वही बाह्य है और वही आंतरिक भी। बाह्य को

समझने के साथ ही आंतरिक गति का प्रारंभ होता है, और यह आंतरिक गति न तो बाह्य के विरुद्ध होती है और न उसकी विरोधाभासी होती है। तब चूंकि द्वंद्व का निवारण हो चुका होता है, इसलिए मस्तिष्क न केवल अत्यधिक संवेदनशील

होते हैं। सारभूत की भावना, सत्त्व का एहसास ही सौंदर्य है।

28 जून 1961

वह जो कि पावन है, लक्षणों से रहित है। देवालय में रखा प्रस्तर, चर्च में लगी प्रतिमा, कोई प्रतीक पावन नहीं है। मनुष्य अपनी जटिल उत्कंठाओं, भयों और तृष्णाओं से परिचालित होकर उन्हें पावन, पवित्र आराध्य कहता है। यह ‘पावनता’ अब भी विचार ही के क्षेत्र में होती है; इसका निर्माण विचार के द्वारा ही किया जाता है और विचार में कभी भी कुछ नूतन अथवा पवित्र नहीं होता है। विचार जटिल मतवादों और विश्वासों की रचना कर सकता है, और जिन प्रतिमाओं, प्रतीकों आदि को यह प्रक्षेपित करता है, वे किसी भवन के नक्शों से अथवा एक नये हवाई-जहाज की रूपरेखा से अधिक पवित्र नहीं होते। यह सभी कुछ विचार के ही सीमांतों में परिवद्ध है और इसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसे पवित्र अथवा रहस्यमय कहा जा सके। विचार पदार्थ ही है और इससे कुछ भी बनाया जा सकता है, असुंदर भी, सुंदर भी।



तथा सतर्क होता है, वरन् वह अनायास ही मौन भी हो जाता है। और इस स्थिति में केवल आंतरिक गति ही प्रामाणिक तथा अर्थपूर्ण होती है।

इस गति से एक उदारता और करुणा अस्तित्व में आती है, जो किसी तर्कबुद्धि अथवा प्रयोजनपरक स्व-निषेध का प्रतिफल नहीं है।

किसी पुष्प का जीवट सौंदर्य इसी में निहित है कि इसे विस्मृत किया जा सकता है, उपेक्षा से दूर हटाया जा सकता है, या फिर विनष्ट ही कर दिया जा सकता है।

महत्वाकांक्षी लोग सौंदर्य से अनभिज्ञ

पर एक पावनता है, जिसका स्रोत न विचार में है, न विचार द्वारा पुनर्जीवित की गई किसी भावना में। इसे विचार द्वारा

## कृष्णमूर्ति वीडियो हिंदी सबटाइल्स के साथ

1. Washington DC 1985 Talk 1 एवं Talk 2.
2. Love and Freedom: Turning Point Series Talk 6
3. Krishnamurti with Rishi Valley Students 1984 Talk 3
4. Why there is such a chaos in the world? Saanen 1980

इन्हें मंगवाने के लिए सम्पर्क करें :

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001,  
ईमेल : [studycentre@rajghatbesantschool.org](mailto:studycentre@rajghatbesantschool.org)  
फोन : 0542-2441289

कृष्णमूर्ति से संबंधित वेबसाइट :

[www.jkrishnamurtionline.org](http://www.jkrishnamurtionline.org)  
[www.kfionline.org](http://www.kfionline.org)  
[www.jkrishnamurti.org](http://www.jkrishnamurti.org)

## हिंदी में उपलब्ध जे. कृष्णमूर्ति की कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

जीवन एक अन्वेषण  
ज्ञात से मुक्ति  
प्रथम और अंतिम मुक्ति  
हिंसा से परे  
अंतिम वार्ताएं  
षिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य  
स्कूलों के नाम पत्र  
सुखी वही जो कुछ भी नहीं  
ईश्वर क्या है?  
आपको अपने जीवन में क्या करना है?  
आजादी की खोज  
प्रेम क्या है?, अकेलापन क्या है?  
सत्य और यथार्थ  
मन क्या है?  
ये रिक्षे क्या हैं?  
ध्यान  
जीवन और मृत्यु  
षिक्षा क्या है?  
सोच क्या है?

पुस्तकों को मंगवाने के लिए सम्पर्क करें :

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221001  
ईमेल : [studycentre@rajghatbesantschool.org](mailto:studycentre@rajghatbesantschool.org)  
फोन : 0542-2441289

## के.एफ.आई. वार्षिक पब्लिक गैदरिंग 2018

इस वर्ष की पब्लिक गैदरिंग राजघाट, वाराणसी में आयोजित की जा रही है जिसका प्रारम्भ 31 अक्टूबर 2018 प्रातः से होगा और समाप्त तक 3 नवम्बर 2018 को दोपहर तक पूरा होगा।

रजिस्ट्रेशन एवं अन्य संबंधित सूचनाओं के लिए कृपया संपर्क करें :-

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट, वाराणसी-221001  
फोन : 0542-2441289, ई-मेल :  
[studycentre@rajghatbesantschool.org](mailto:studycentre@rajghatbesantschool.org)

## सजगता और हमारा दैनिक जीवन

राजघाट, वाराणसी में हिन्दी में कृष्णमूर्ति शिक्षाओं पर आधारित अध्ययन-रिट्रीट  
1 से 4 अप्रैल 2018

रिट्रीट 1 अप्रैल को प्रातः 10 बजे आरंभ होकर 4 अप्रैल की संध्या तक आयोजित है। आप 31 मार्च को यहां पहुंचकर 5 अप्रैल को किसी भी समय अपनी वापसी की व्यवस्था रख सकते हैं।

रजिस्ट्रेशन एवं अन्य संबंधित सूचनाओं के लिए कृपया संपर्क करें :-  
कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट, वाराणसी-221001  
फोन : 0542-2441289, ई-मेल :  
[studycentre@rajghatbesantschool.org](mailto:studycentre@rajghatbesantschool.org)

## क्या आप 'स्वयं से संवाद' के निःशुल्क सदस्य बनना चाहते हैं?

जे. कृष्णमूर्ति की शिक्षाओं को हिंदी जनमानस में व्यापक रूप से उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 'स्वयं से संवाद' का प्रकाशन किया जा रहा है। आप इसकी सदस्यता निःशुल्क प्राप्त कर सकते हैं। यदि आप भविष्य में इसे नियमित रूप से प्राप्त करना चाहते हैं तो कृपया हमें पत्र या ईमेल के ज़रिये सूचित अवश्य करें :

संपादक, 'स्वयं से संवाद'

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001  
ईमेल : [studycentre@rajghatbesantschool.org](mailto:studycentre@rajghatbesantschool.org)

जैसे ही आपके समक्ष किसी संकट, किसी चरमता की घड़ी आती है, कोई अतीत या वर्तमान नहीं होता, बस वही एक पल होता है। उस 'क्राइसिस' में समय मौजूद ही नहीं रहता। जैसे ही, जिस पल समय का प्रवेश होता है, क्षरण की शुरुआत हो जाती है...द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान, इंग्लैंड में किसी लॉर्ड ने मुझे कहा था, “हम वर्ग का, ऊँच-नीच का सारा भाव खो चुके थे, भूमिगत डेरे में हम सब साथ मिलकर रहते थे।” यानी कि एक संकट की घड़ी में उस संकट के सिवाय सब कुछ लुप्त हो गया था—मेरा वर्ग, मेरी उच्च श्रेणी, मेरा यह, मेरा वह, सब। जिस क्षण युद्ध समाप्त हुआ, वे अपने महलों में वापस लौट आये : “मैं फलां लॉर्ड हूँ।”

—जीवन एक अन्वेषण से

नहीं पहचाना जा सकता, न ही यह विचार के उपयोग में आ सकती है। विचार इसका प्रतिपादन नहीं कर सकता। किंतु एक पावनता है तो; किसी भी प्रतीक या शब्द से अस्पर्शित, अनछुई। यह निर्वचनीय नहीं है, इसका संप्रेषण नहीं हो सकता। यह पावनता एक तथ्य है।

तथ्य को तो देखना होता है, और देखना शब्द के माध्यम से नहीं हुआ करता। जब किसी तथ्य की व्याख्या कर दी जाती है, तो वह तथ्य नहीं रह जाता; यह उससे कुछ नितांत भिन्न ही बात हो जाती है। सर्वाधिक महत्त्व देखने का है। यह देखना समय-आकाश से बाहर है; यह देखना तत्क्षण, तुरंत होता है। और जो देख लिया जाता है वह फिर कभी वही नहीं होता है। इसमें ‘फिर से’ या ‘इस दौरान’ जैसा कुछ है ही नहीं।

इस पावनता का उपासक, वह अवलोकनकर्ता जो इस पर ध्यान लगाए, है ही नहीं। यह खरीदने या बेचने की, बाज़ार की वस्तु नहीं है। सौंदर्य की तरह इसे इसके विपरीत के माध्यम से नहीं देखा-समझा जा सकता, क्योंकि इसके विपरीत का अस्तित्व है ही नहीं।

वह उपस्थिति यहां है, कक्ष को आपूरित करती, पर्वतों पर छलकती, जलराशियों पर व्याप्त होती, और उनसे पार धरित्री को आवृत करती।

20 जुलाई, 1961

कमरा उस आशीष से परिपूर्ण हो उठा। इसके पश्चात जो कुछ घटित हुआ,

उसे शब्दों में अभिव्यक्त कर पाना लगभग असंभव है; शब्द कितने निर्जीव होते हैं, उनका सुनिश्चित और तय अर्थ होता है और जो घटित हुआ, वह शब्दों तथा वर्णन की क्षमता से पूर्णतया परे था। यह समस्त सृष्टि का केंद्र था; यह एक पावनकारी गांभीर्य था, जिसने मस्तिष्क को हर विचार व हर भावना से मुक्त कर परिमार्जित कर दिया था। इसका यह गांभीर्य बिजली सा था जो नष्ट कर देती है, जलाकर भस्म कर देती है; इसकी गहनता को मापा जाना संभव न था, यह अचल, अभेद्य था, अविकंप और प्रत्यक्ष किंतु आकाश सा निर्भार। यह नेत्रों में था, श्वासों में था। जिन नेत्रों ने देखा, जिन्होंने अवलोकन किया, वे नेत्र स्थूल चक्षुओं से वैसे तो पूर्णतः भिन्न थे, तथापि वे थे वही। वहां बस देखना मात्र रह गया था, वे आंखें जो समय-आकाश से परे देख रही थीं। इसमें एक अभेद्य गरिमा थी और थी एक ऐसी शांति जो समस्त गतिशीलता का, समस्त कर्म का सार-स्वरूप तत्त्व है। इसे कोई पुण्य स्पर्श नहीं करता, क्योंकि यह समस्त पुण्य से और सभी मानव-सम्मत निर्णयों से परे है। केवल प्रेम था, जो अत्यंत भंगुर था, कोमल था, और इसलिए इसमें सभी सद्यःजात वस्तुओं जैसी सुकुमारता थी, आकस्मिक आघात से अपनी रक्षा न कर पाने की कोमलता, सुभेद्यता, भंगुरता थी, तथापि वह इन सबसे मुक्त था अतएव अविनाशी था, इसे कोई संज्ञा नहीं दी जा सकती थी, यह ज्ञान से अस्पर्शित था। इसे कोई विचार

कभी न भेद सकता था; कोई कर्म इसे छू भी न सकता था। यह विशुद्ध था, स्पर्श से परे; और इसीलिए प्रति क्षण मर्त्य होते हुए सुंदर था।

यह सब मस्तिष्क को प्रभावित करता हुआ जान पड़ता था, अब यह पूर्व की तरह नहीं था (विचार कितनी सतही चीज़ होता है, आवश्यक, किंतु सतही)। इसकी विद्यमानता के कारण संबंध रूपांतरित हो गए से लगते थे। जैसे कोई भयानक झँझावत, कोई विनाशकारी भूकंप नदियों के रुख को बदल देता है, प्राकृतिक भूदृश्य को परिवर्तित कर देता है, धरती में गर्त निर्मित कर देता है, वैसे ही इसने विचार के रूपाकार को संतुलन दे दिया है, हृदय की रचना को बदल डाला है।

30 जुलाई, 1961

यह एक मेघाच्छन्न दिवस था, काले बादलों के भार से बोझिल; सुबह वृष्टि हुई थी और वातावरण में ठंडक आ गई थी। धूमने के पश्चात यद्यपि हम लोग बातें तो कर रहे थे, पर हमारा अधिक ध्यान धरती के सौंदर्य पर, मकानों पर तथा वृक्षों के गहरे रंगों की छटा पर था।

अप्रत्याशित रूप से अच्यानक उस अलभ्यप्राय शक्ति और दृढ़ता की एक चमक कौंधी जो कि शरीर को स्तब्ध कर देने वाली थी। देह मानो ठिठक कर निश्चल हो गई हो, और अपने नेत्र बंद कर लेने पड़े, ताकि मूर्छा न आए। यह विभंजनकारी था, और ऐसा जान पड़ा जैसे वह सब कुछ जो वहां था, एकाएक अस्तित्वरहित हो गया हो। और उस



स्व-ज्ञान, ‘सेल्फ-नॉलेज’ से हमारा अभिप्राय खुद को जान लेना नहीं है, बल्कि यह विचार की हर हलचल को जानना देखना है; क्योंकि यह ‘स्व’ विचार ही तो है।

—जीवन एक अन्वेषण से

शक्ति की अचलता ने तथा उसकी सहवर्ती विध्वंसात्मक ऊर्जा ने, दृष्टि तथा श्रवण शक्ति की सारी सीमितताओं को जलाकर भस्मसात् कर दिया था। यह कुछ ऐसा विराट था, जिसका वर्णन किया जाना असंभव है और जिसकी ऊंचाई तथा गहराई अनवगम्य है, उसे जाना नहीं जा सकता।

आज पौ फटने के साथ ही, सुबह-सवेरे, जब आकाश में एक भी मेघ न था, और हिमढ़के पर्वत बस आभासमान ही हुए थे कि अपने नेत्रों तथा कंठ में उस अभेद्य शक्ति की उपस्थिति के बोध से जाग गया; यह स्थिति कुछ ऐसी लग रही थी, जिसे छुआ जा सकता है, कुछ ऐसा, जिसका न होना कभी संभव ही न हो। प्रायः एक घटे तक यह विद्यमान रही और मस्तिष्क रिक्त रहा। यह ऐसा कुछ नहीं था जिसे विचार पकड़ ले और रोककर स्मृति में संचित कर ले, ताकि फिर कभी इसे स्मरण कर सके। यह तो बस विद्यमान था, और समस्त विचार मृत था। विचार क्रियाधर्म होता है और उसी परिप्रेक्ष्य में इसका उपयोग भी है; विचार इसके बारे में नहीं सोच सकता क्योंकि विचार समय है; और यह तो समस्त काल तथा परिमाण के पार था। विचार, कामना इसके सातत्य अथवा पुनरावृत्ति हेतु प्रयास नहीं कर सकते, क्योंकि विचार व कामना तो सर्वथा अनुपस्थित थे। फिर यह क्या है जो इसे लिख लेने के लिए स्मरण रखता है? केवल यंत्रचालित अंकन, परंतु यह अंकन, यह शब्द वह वस्तु नहीं है।

18 अगस्त 1961

प्रायः रात्रि-भर वर्षा होती रही थी, जिसके फलस्वरूप ठंड काफी बढ़ गई थी; ऊंची पहाड़ियों तथा पर्वतों पर ढेर सारी ताज़ा बर्फ जमा हो गई थी। और हवा में भी चुभन सी थी। हरे-भरे मैदान असाधारण रूप से उज्ज्वल थे, और उनकी हरीतिमा चमत्कृत कर देने वाली थी। लगभग पूरे दिन पानी बरसता रहा था और तीसरे पहर के जाते-जाते आकाश खुलने लगा और सूर्य पर्वतों के

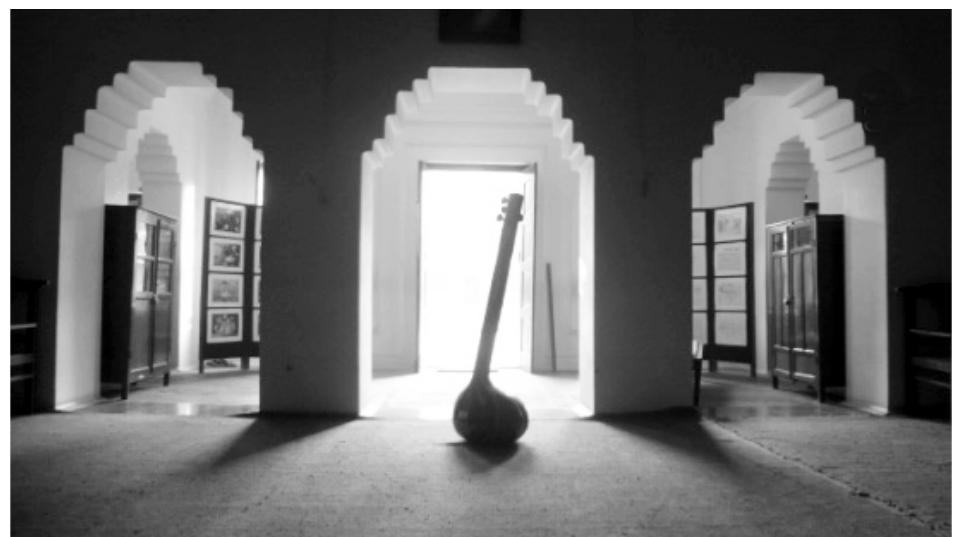
मध्य दिखलाई देने लगा। हम एक ऐसे रास्ते पर चल रहे थे, जो कई गांवों से होकर गुज़रता था, जो फार्म हाउसों के बीच से मुड़ता-धूमता हुआ, हरे-भरे मैदानों से होकर जाता था। बिजली के उच्चशक्ति के तार ढोने वाले भीमकाय स्तंभ सांध्य आकाश की पृष्ठभूमि में चमत्कारी ढंग से खड़े थे। चपल मेघ और उनकी सन्निधि तक पहुंचती उत्तुंग लौह संरचनाएं, सुंदरता और शक्तिमत्ता का एक अद्भुत दृश्य प्रस्तुत कर रही थीं। लकड़ी के पुल पर से पार जाते हुए, इस सारी वृष्टि से उमड़ आई धारा अपने यौवन के चरम पर दिखलाई देती थी; यह एक ऐसी ऊर्जा और शक्ति के साथ तीव्र वेग से बहती जा रही थी, जो केवल पर्वत से निकलने वाली धाराओं में ही देखी जा सकती है। ऊपर तथा नीचे की ओर, पथरों और वृक्षों से भरे किनारों के बीच दृढ़तापूर्वक बंधी हुई उस धारा पर दृष्टि डालते समय, काल की गति का, अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का पूरा भान था; पुल वर्तमान था और इस वर्तमान से ही होकर समस्त जीवन गतिमान तथा प्राणवान था, चिन्मय और चेतन था।

पर इस सबसे परे उस बारिश से धुली और कीचड़ सनी गली में वह अन्यतम, वह जगत विद्यमान था जिसे मानव विचार, उसकी गतिविधियां तथा उसकी अंतहीन वेदनाएं कभी स्पर्श तक नहीं कर सकतीं। यह जगत आशा अथवा विश्वास की उत्पत्ति न था। उस समय यद्यपि इस ओर पूर्ण एकाग्रता न थी,

मन को रिक्त करना अर्थात् चेतना को इसकी अंतर्वस्तु से—जो कि भय तथा शेष सब है—रिक्त करना है। करिए इसे। जिसका अर्थ है आपको विचार की प्रत्येक हलचल के प्रति सजग होना होगा, एक भी विचार को न छूकते हुए।

—जीवन एक अन्वेषण से

क्योंकि देखने, अनुभव करने तथा गंध लेने हेतु तब कितनी ही वस्तुएं वहां पर थीं; मेघ थे, पर्वतों के पार धूसर-नील आकाश था, और उसके मध्य स्थित सूर्य भी था; चमकदार मैदानों पर फैला सांध्य आलोक था तथा गोशालाओं एवं फार्म हाउसों के चारों ओर खिले लाल फूलों की गंध भी थी। इस अलौकिकता ने वहां पर इस सबको आवृत कर लिया था, कोई छोटी से छोटी वस्तु भी विस्मृत नहीं की गई थी; और शैया पर जाग्रत पड़े होने की इस अवस्था में, यह वृष्टि की तरह से उमड़ती हुई, मन और हृदय को परिव्याप्त करते हुए प्रविष्ट हुई। और इसके गहन सौंदर्य का, इसकी उत्कटता और प्रेम का स्पर्श बोध में उतरने लगा। यह प्रेम वह नहीं है, जिसे प्रतिमाओं में ढालकर मंदिरों



में पूजा जाता है; यह प्रेम वह नहीं है जिसका प्रतीकों, चित्रों और शब्दों आदि के द्वारा आह्वान किया जाता है; यह प्रेम वह भी नहीं है जो ईर्ष्या और डाह के वेश में होता है; वरन् यह ऐसा प्रेम है, जो विचार तथा भावना से विमुक्त है, जो स्वतः संचालित स्वच्छंद गतिशीलता है। इसका सौंदर्य स्व-परित्याग के भावोद्रेक से युक्त होता है। यदि यह संयम से रहित हो, तो उस सौंदर्य में भावोद्रेक का अभाव रहेगा। संयम मन के क्षेत्र की कोई वस्तु नहीं होती, जिसे त्याग, दमन और अनुशासन के माध्यम से एकत्रित किया जा सके। इन सबका तो अनायास सहज रूप में पर्यवसान हो जाना आवश्यक है, क्योंकि उस अन्यतम के लिए इनका कोई प्रयोजन नहीं है। एक बाढ़ की तरह यह अपनी अमित विपुलता के साथ भीतर बरस गया। इस प्रेम का न तो कहीं केंद्र था, और न परिधि थी और यह इतना परिपूर्ण, ऐसा अभेद्य था, कि इसमें कोई छाया तक विद्यमान न थी, जो इसे स्पर्श कर सकती हो; अतः यह सदैव मिटाया भी जा सकता था।

अपने अंतःकरण में भी हम सदा बाह्यपरक दृष्टि का ही प्रयोग करते हैं; जानकारी से हम और अधिक जानकारी की दिशा में आगे बढ़ते हैं, सदैव इसकी वृद्धि करने में ही संलग्न रहते हैं; और यदि कभी जानकारी से मुक्ति का प्रयत्न भी किया जाता है तो वह भी पुनः वृद्धि का ही एक और नया प्रकार मात्र होता है। और हमारी चेतना हजार स्मृतियों तथा परिचयों-मान्यताओं से निर्मित है; इसमें थरथराती पत्ती के प्रति हमारी चेतना, फूल के प्रति, उस मनुष्य के हमारे समीप से गुजरने के प्रति, मैदान में दौड़ रहे उस बच्चे के प्रति, इसी प्रकार चट्टान के, निर्झर के, चटकीले लाल पुष्प तथा सुअरबाड़े की दुर्गंध के प्रति हमारी चेतना सभी संयुक्त है; हमारी चेतना इस सबका योग है। इस स्मरण तथा परिचय के आधार पर, इन बाहरी प्रत्युत्तरों के माध्यम से हम अपने अंतर्जगत को, अपने गहनतर प्रयोजनों और बाध्यताओं को समझने का यत्न करने लगते हैं, हम मन की विस्तीर्ण गहनताओं में अधिक से अधिक गहरे जाकर खोजबीन करने लगते

हैं। चुनौतियों और प्रत्युत्तरों को, प्रच्छन्न तथा प्रकट गतिविधियों को अनुभव करने तथा पहचानने की यह सारी प्रक्रिया ही समय में आबद्ध चेतना है।

प्याला केवल उसकी आकृति, रंग तथा विन्यास भर नहीं है, प्याले की रिक्तता भी इसमें समाविष्ट है। वह प्याला, एक रूप-विशेष में गृहीत शून्यता भी है; उस शून्यता के अभाव में न तो प्याला हो सकता है और न रूप हो सकता है। चेतना को हम बाह्य लक्षणों से जानते हैं, ऊँचाई तथा गहराई, विचार तथा भावना के संबंध में इसकी सीमितताओं के आधार पर जानते हैं। परंतु यह सब चेतना का बाहरी रूप है; बाह्य के माध्यम से हम अंतरिक का पता लगाना चाहते हैं। क्या यह संभव है? सिद्धांत तथा अनुमान-आश्रित चिंतन इस विषय में बिल्कुल महत्त्व नहीं रखते; वस्तुतः वे तो समस्त अन्वेषण को सर्वथा अवरुद्ध ही करते हैं। बहिरंग से हम अंतरिक का पता लगाना चाहते हैं, ज्ञात से हम अज्ञात का पता लगा लेने की आशा रखते हुए खोज-बीन करते हैं। क्या अंतरंग से बाह्य



का अनुसंधान किया जाना संभव है? उस यंत्र को तो हम जानते हैं, जो बाह्य के माध्यम से अनुसंधान करता है, परंतु क्या ऐसा कोई साधन या उपकरण है, जो अज्ञात की सहायता से ज्ञात का अनुसंधान करता हो? क्या उसका अस्तित्व है भी? और ऐसे किसी यंत्र का अस्तित्व किस प्रकार हो सकता है? ऐसा यंत्र हो नहीं सकता। और मान लें कि ऐसा यंत्र है, तो उसे पहचाना जा सकेगा; वह परिचय के अंतर्गत अवश्य होगा, और यदि यह परिचय के अंतर्गत है तो ज्ञात की परिधि में, ज्ञात के दायरे के भीतर ही रहेगा।

उस अद्भुत धन्यता का आगमन उसकी अपनी चाह से होता है, पर प्रत्येक भेट के साथ, अंतस् की गहराइयों में एक रूपांतरण भी घटित हो जाता है; यह फिर कभी पूर्ववत् नहीं रहता।

21 अगस्त 1961

आज भी फिर एक स्वच्छ धूप-भरा, लंबी-लंबी छायाओं और चमचमाती पत्तियों का दिन था; पर्वत शांत, सघन तथा निकट थे; आकाश का नीलवर्ण असाधारण था, निष्कलंक और मृदुल। छायाएं धरती पर सर्वत्र फैली हुई थीं, यह सुबह जैसे विशेष रूप से उनके ही लिए आई थी, छोटी-छोटी और बड़ी-बड़ी, लंबी-लंबी और दुबली-पतली छायाएं और स्थूलकाय, स्वस्थ और संतुष्ट छायाएं, सिमटी सी सीधी-सादी छायाएं, और उल्लास-उमंग भरी चंचल, नटखट और शरारती छायाएं। फार्म हाउसों तथा पर्वतीय आवासों की नई पुरानी छतें पालिशदार संगमरमर की तरह चमचमा रही थीं। ऐसा लग रहा था मानो वृक्ष और मैदान आनंदोत्सव मना रहे हों और शोरगुल कर रहे हों; उनका अस्तित्व एक दूसरे के लिए था और उनके ऊपर जो स्वर्ग था, वह मानव निर्मित नहीं था जहां यातनाएं और आशाएं हुआ करती हैं। और सभी दिशाओं में जीवन का विस्तार था, अपार, विराट, वैभवशाली और स्पृदित प्राण यह जीवन ही था, चिरयुवा और सदैव चुनौतियों से भरा जीवन, जो कभी ठहरता नहीं, जो सारी धरती पर

निःसंग भाव से विचरता रहता है, कभी कहीं भी अपना निशान नहीं छोड़ता, न कभी कुछ मांगता और न किसी के लिए प्रतीक्षारत। यह वहां पर प्रचुरतापूर्वक विद्यमान था, बिंबरहित और मृत्यु से अतीत, अमर; इसे इसकी परवाह न थी कि इसका आगमन कहां से हुआ है और गंतव्य कहां, किस दिशा में है। जहां यह था, वहीं जीवन था, काल और विचार से नितांत परे। यह अद्भुत था, मुक्त, निर्भार, और अथाह। इसे रोककर बंदी नहीं बनाया जा सकता था, जहां कहीं भी इसे बंदी बनाया गया, फिर चाहे वह पूजागृह हो, बाजार हो, घर हो, कहीं भी क्यों न हो, वहीं पर पतन, भ्रष्टा और उनसे संबद्ध अंतर्हीन सुधार अस्तित्व में आने लगे। यहां यह सहजतापूर्वक विद्यमान था, तेजस्वी और प्रलयकर, और विचारातीत तथा भावनातीत है इसका सौंदर्य। यह इतना व्यापक और अतुलनीय है कि धरती और आकाश में सर्वत्र व्याप्त है, धास के उस तिनके में भी, जिसे शीघ्रता से मिटाया जा सकता है। यह विद्यमान है, प्रेम और मृत्यु सहित।

वन में शीतलता थी, जहां कुछ ही फुट नीचे एक जलधारा ऊंचे स्वरों में पुकार रही थी; चीड़ वृक्ष धरती पर एक दृष्टि तक न डालते हुए, तीव्र वेग से आकाश की ओर मानो उसे छूने जा रहे थे। वृक्षों में उगने वाली खुंबियों को खाती हुई काली गिलहरियां वृक्षों पर संकीर्ण वर्तुलों में धूमते हुए एक-दूसरे का पीछा कर रही थीं; आसपास का सारा परिवेश अत्यंत मोहक था, अद्भुत रूप से लुभावना था, एक छोटी सी फुर्तीली चिड़िया संभवतः रोंबिन या उस जैसी ही दूसरी कोई उड़कर तेजी से ऊपर जा रही थी और पुनः नीचे

....अंतर्विरोध है, संघर्ष है, और वह सब ऊर्जा की बरबादी है। क्या जीवन जीने की ऐसी भी कोई राह है जो ऊर्जा की बरबादी नहीं है?

—जीवन एक अन्वेषण से

हवा में ही गोता लगा रही थी। ठंडी पर्वतीय जलराशि की उस धारा के सिवा वहां बस शीतलता और निःस्तब्धता का ही साम्राज्य था। और था प्रेम, सर्जन तथा संहार, किसी प्रतीक की तरह नहीं, विचारगत और भावनापरक नहीं, वरन् एक वास्तविक यथार्थ की तरह। आप इसे देख नहीं सकते थे, इसका संवेदन नहीं कर सकते थे, पर वहां यह था, प्रबल विस्तार सहित, दस सहस्र के समान शक्तिशाली एवम् सर्वाधिक नमनीय की दृढ़ता सहित। यह विद्यमान था, और सब कुछ स्तब्ध हो उठा, ठिठक कर निश्चल हो गया, मस्तिष्क और देह भी। यह एक अनुग्रह था, और मन इससे अभिन्न था।

गहनता की कोई सीमा नहीं होती; इसका सार-तत्त्व काल तथा आकाश से रहित है। इसे अनुभव नहीं किया जाता; अनुभव तो अत्यंत नकली, चमक-भरी सस्ती वस्तु है, आसानी से मिलने तथा खो जाने वाली; विचार इसे संयोजित नहीं कर सकता और न भावना इस तक पहुंच सकती है। ये मूढ़तापूर्ण और अपरिपक्व बातें हैं। परिपक्वता का समय से कोई संबंध नहीं होता, यह आयु से संबंधित नहीं है, और न यह प्रभावों और परिवेश के द्वारा, वातावरण के द्वारा लायी जा सकती है। इसे खरीदा नहीं जाता, पुस्तकें, शिक्षक अथवा एक या अनेक उद्धारकर्ता इस परिपक्वता के लिए अनुकूल परिवेश निर्मित नहीं कर सकते। परिपक्वता स्वयं अपने आपमें कोई लक्ष्य नहीं है; यह विचार के द्वारा संवर्धित नहीं की जाती, उसके बिना स्वयं ही अस्तित्व में आती है, चुपचाप ध्यान के आयोजन बिना, अज्ञात रूप से। इस परिपक्वता का होना आवश्यक है, इस प्रौढ़ता का जीवन में घटित होना आवश्यक है; वह प्रौढ़ता नहीं जो व्याधि और अराजकता से, विषाद और आशा से स्वयमेव आ जाती है। हताशा तथा कष्ट इस सर्वांगीण परिपक्वता को अस्तित्व में नहीं ला सकते, इसे तो अनायास ही आना होता है।

क्योंकि इस सर्वांगीण परिपक्वता में ही संयम-तप का वास है, भस्मी रमाने और टाट लपेटने वाला संयम नहीं, वरन् संसार

की वस्तुओं, इसके सद्गुणों, भगवानों, प्रतिष्ठाओं, आशाओं तथा मूल्यों के प्रति सहज स्वाभाविक और अनायोजित उदासीनता। एकाकीपन से फलित होने वाले इस संयम हेतु इन सबका पूर्णरूपेण निषेध आवश्यक है। इस एकाकीपन को समाज अथवा संस्कृति का कोई प्रभाव कभी स्पर्श तक नहीं कर सकता। पर यह सहज रूप से ही हो, समय और प्रभाव की संतति न हो, मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाली कोई काल्पनिक रचना न हो। मेघ-गर्जन की तरह इसका आगमन हो; इसका उद्गम कहां है यह जान सकना संभव न हो। और इसके अभाव में पूर्ण परिपक्वता नहीं आ पाती। एक अकेलापन वह होता है जो आत्मदया व आत्मरक्षा का सार होता है, जो किसी मिथक में, जानकारी में और धारणा आदि के रूप में बंधकर जीवन से अलगाव का ही सारभूत रूप होता है, और यह अकेलापन एकाकी होने से एकदम अलग बात है; अकेलेपन में तो पुनः जुड़ने और पुनः विलग होते

रहने का अनवरत प्रयास सदा के लिए बना ही रहता है। पर एकाकीपन जीवन

**जब भय उठे, जिस किसी भी कारण से, उसके साथ बने रहिए, किसी बहाव, किसी 'मोमेंटम' के बगैर, बिना विचार की किसी भी हलचल के।**

—जीवन एक अन्वेषण से

का वह रूप है, जिसमें सभी प्रभावों की इति हो चुकी है। यही एकाकीपन संयमित जीवन का सार-सर्वस्व है।

22 अगस्त 1961

वातावरण में उस असह्य तेजस्विता की प्रखर और प्रभावी उपस्थिति थी। यह कपोल कल्पना न थी; जहां यथार्थ है, वहां कल्पना खो जाती है; कल्पना संकटकारी

होती है, इसकी कोई प्रामाणिकता नहीं होती, केवल तथ्य ही प्रामाणिक होता है। मन के सपने और कल्पना सुखदायी और छल-भरे हैं, और उनका पूर्णरूपेण निरसन कर दिया जाना आवश्यक है। हर प्रकार के मिथकों, मनस्तरंगों और कल्पनाओं को समझ लिया जाना आवश्यक है, और उनकी यही समझ उनमें प्रतीत हो रही सार्थकता से उन्हें मुक्त कर देती है। यह विद्यमान था, और ध्यान के रूप में जो प्रारंभ हुआ था, उसकी समाप्ति हो चुकी थी। जब यथार्थ प्रत्यक्ष हो, तो ध्यान का क्या अर्थ रह जाता है! यथार्थ की विद्यमानता, ध्यान का परिणाम कदापि नहीं थी, कोई भी बात इसके प्रकटन का कारण नहीं हो सकती; ध्यान के होते हुए भी यह विद्यमान था, परंतु आवश्यक था एक अत्यंत संवेदनशील, सतर्क मस्तिष्क जिसने पूरी तरह से, स्वेच्छा से और अनायास, अपनी तार्किक और अतार्किक बड़बड़ बंद कर दी हो। यह एकदम मौन हो गया था, कोई व्याख्या, कोई वर्गीकरण न करते हुए यह बस देख रहा था और सुन रहा था; यह

इस पर ध्यान देना दिलचस्प होगा कि तथाकथित व्यक्ति, 'इंडियनिजुअल' का तो कोई वजूद है नहीं, क्योंकि उसका मन संस्कारबद्धता के जिस समान, एक ही भंडार से अपना पोषण ले रहा है, उसमें हर किसी अन्य के साथ उसका साझा है, अतएव समुदाय और व्यक्ति में यह बँटवारा झूठा है : केवल संस्कारबद्धता ही है। और यह संस्कारबद्धता तमाम संबंधों के बीच हो रहा कर्म है; संबंध जो वस्तुओं, लोगों तथा धारणाओं से हैं।

'अर्जेन्सी ऑव चेन्ज' से



चुप था व और कोई ऐसी सत्ता या आवश्यकता नहीं थी, जो इसे चुप कर रही हो। मस्तिष्क पूर्णतः निश्चल और अतीव चैतन्य था। उस अगाधता ने रात्रि को स्वयं से आपूरित कर दिया और आनंद सघन हो उठा।

यह संबंधित किसी से भी नहीं था; यह किसी को आकार देने, किसी में परिवर्तन लाने, या किसी भी आग्रह को व्यक्त करने का कोई प्रयत्न नहीं कर रहा था; यह प्रभाव से विरहित था, और इसीलिए अदम्य था। यह कल्याण करने

के कार्य में नहीं लगा था, सुधार नहीं ला रहा था; यह प्रतिष्ठा-प्राप्ति में रत नहीं था, अतएव अमित संहारक था। किंतु यह प्रेम था, वैसा प्रेम नहीं जिसे समाज संवर्धित करता है, जो एक उत्पीड़ित रिस्थिति है। यह तो जीवन, प्रवाह का सार-तत्त्व ही था। यह विद्यमान था, अदमनीय, संहारकारी और इसमें एक ऐसी कोमलता भी थी जिसे केवल अभिनव ही जानता है, जैसे वसंत ऋतु की वह नयी पत्ती; वह आपको बता देगी। और एक सुट्टूढ़ता भी जो परिमाण से परे

थी, तथा वह शक्ति भी जो केवल सर्जन में हुआ करती है। सब कुछ चुप था। वह एक तारा जो पहाड़ से थोड़ा ही ऊंचा दिख रहा था, अब बहुत ऊपर तक आरोहण कर चुका था, और अपने एकांत में तेजोदीप्त था।

‘कृष्णमूर्ति नोटबुक’



## प्रश्नकर्ता : हम इस धरती पर किसलिए हैं?

**कृष्णमूर्ति :** आप इस धरती पर हैं भरपूर जीने के लिए, खुशी-खुशी, अपने पूरे वजूद के साथ, बिना किसी महत्वाकांक्षा, लोभ या भय के। अगर आप महत्वाकांक्षी या लोभी हैं, तो पूरी तरह जी ही नहीं सकते, क्योंकि लोभ और महत्वाकांक्षा आपकी ऊर्जा को छितरा देंगे। पूरी तरह जीने का मतलब है, भय के बगैर, दुःख के बगैर जीना, किसी ईश्वर से कुछ भी न मांगते हुए, क्योंकि तब अपनी रौशनी आप खुद ही होंगे। जब आप पूरी तरह से जीते हैं—अपने आप में रौशन हो कर—तो आप किसी के अनुयायी नहीं होंगे, आपकी कोई राष्ट्रीयता नहीं होगी, न ही आप किसी धार्मिक या राजनीतिक समूह का हिस्सा होंगे। चूंकि आप एक मुक्त, स्वतन्त्र मनुष्य होंगे, इसलिए इस संसार में समृद्धि के साथ जीना आपके लिए मुमकिन होगा, भले ही आपके पास कम हो अथवा अधिक, और जीवन जीने के इस कर्म में ही आप इस धरती को सुंदर बनाते जाएंगे।

ए टाइमलेस स्प्रिंग, 23 नवंबर 1963  
विद्यार्थियों के साथ बातचीत



## ‘स्वयं से संवाद’

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया

राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001

ईमेल : [studycentre@rajghatbesantschool.org](mailto:studycentre@rajghatbesantschool.org)

संपादक : मुकेश

सलाहकार : शक्ति

अनुवाद : विनय कुमार वैद्य

‘कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया’ के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्ण द्वारा सत्तनाम प्रिटिंग प्रेस, एस-1/208 के-1 नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी 221 002 से मुद्रित एवं  
कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी 221 001 (उ. प्र.) से प्रकाशित। संपादक : मुकेश